कवि

चंदन पांडेय

हिन्दी ADDA

कवि

कवि होने से पेश्तर प्रदीप पर मुझे कोई दूसरी बढ़त हासिल नहीं थी। इसका पता भी सिर्फ मुझे ही था वरना बाकी दुनिया के लिए हम अतुल्य थे। प्रदीप मेरा बॉस नहीं था पर सीनियर था। उसके कई एक काम मुझे करने होते थे। मेरे टेबल (वर्क स्टेशन) की तुलना में उसका चेंबर भव्य था और कोई एक तुक भी ऐसा नहीं था जो हमारे बीच के तनाव या कह लीजिए संबंध का तर्क बने।

पहले ही दिन से हमारे बीच फाँक पड़ गई।

मेरे सुपरवाइजर ने प्रदीप से परिचय कराया। दोपहर के भोजन के लिए हम साथ साथ कैंटीन गए। मेज पर कंपनी के छः सात बड़े अधिकारी थे। व्यवसाय से अलग दुनिया जहान की बातें हो रही थी। उनकी सूचनाओं से मैं चकित था और चुप ही चुप खाए जा रहा था। प्रदीप की गति आर्थिक मोर्चे पर अच्छी थी और बात होते न होते जनसंख्या पर पहुँच गई। बाकी लोग, जो 'डिजर्ट्स' खा रहे थे, हल्की बातें कर रहे थे जैसे सरकार की कोशिश पुरसुकून नहीं है। विभिन्न जातियों को भी ख्याल रखना चाहिए। प्रदीप ने माल्थस के जनसंख्या नियंत्रण संबंधी सिद्धांत का जिक्र किया।

माल्थस का जिक्र सुन मैंने प्रदीप की ओर देखा। उसने समझा कि मैं कुछ कहना चाहता हूँ। पूछा : एनी आईडिया ओवर दिस? नौकरी या ऐसी संवेदनशील जगहों पर मैं राय जाहिर करने से बचता हूँ। 'जनसंख्या' मुद्दा न होता तो यहाँ भी चुप रहता। मेरे भाव इस तरह फूटे : जनसंख्या नियंत्रण औपनिवेशिक विचार है। हो सकता है यह पृथ्वी के लिए उपयोगी हो पर अपने मूल में यह साम्राज्यवादी सोच है।

मैं हमेशा ही उपस्थित मुख्यधारा के विरोध में कैसे चला जाता हूँ, यह मुझे भी नहीं पता। प्रदीप मेरी दलील से चौंका। कहा : कम अगैन? क्या कहा? मैं रत्ती भर मुस्कराया और अपनी बात दुहरा दी। उसमें यह पैबंद लगा दिया कि यूरोपीय देशों ने हर जगह अपना उपनिवेश बना रखा है और अपने शासन या भाषा के बलबूते उस उपनिवेश में जनसंख्या बढ़ाए रखते हैं जैसे फ्रांस कनाडा में, स्पेन अर्जेंटीना तथा मेक्सिको में और खुद इस मुगालते में रहते हैं कि उनकी जनसंख्या कम है। साथ ही हम भारतीय या अरब या चीनी लोगों को यह सबक याद कराते रहते हैं कि हमें जनसंख्या पर नियंत्रण करना चाहिए।

मेरे तर्क से प्रदीप हैरान हो गया : हू आर यू मैन?? दुबारा पूछा : कहाँ से आए हो भाई? इसका जवाब मेरे बॉस ने दिया : बनारस से। प्रदीप ने कहा, उसे पता है और उसके पूछने का अर्थ यह था कि कैसी जगह से पढ़ लिख कर आया है। एक सज्जन ने, जिनकी पिछली कोई पुश्त बनारस से जुड़ती थी, मुझे लपक लिया और मुझसे ही बनारस की महिमा बखान करने लगे। मेरा ध्यान प्रदीप पर था। भोजन के बाद उसने मुझे अपने चेंबर में बुलाया।

मुझसे गलती हो चुकी थी। अब मेरी हालत उस खिलाड़ी की थी जिसे अपना बिगड़ा खेल बनाना हो पर वो भी गिने चुने दिमागों में से एक निकला। मिलते ही पूछा : पी.यू.सी.एल. का अध्यक्ष मेरे ही गाँव से है। मैंने कहा : कौन, प्रभाकर सिंह? उसका

लपकता हुआ सवाल आया : जानते हो उसे? मैं उसे सामान्य ज्ञान के तहत ही जानता था और इतना ही प्रदीप को बताया। उसने सीधा सवाल किया : मैं समझता हूँ तुम 'लेफ्ट' के पक्षधर हो? प्रश्न सामान्य था पर इसका सटीक उत्तर मेरे नौकर मन के वश में नहीं था।

उसने दिलासा दिया। कहा, वो किसी से बताने नहीं जा रहा। यह लोकतंत्र है और सबको अपनी राय रखने की गंदी आजादी है। प्रत्युत्तर जरूरी था इसलिए दिया : नहीं। और हाँ भी। कम से कम सैद्धांतिकी में वो सर्वश्रेष्ठ हैं वो : तो तुम पढ़ते भी हो? यहाँ से मुझे सँभालना था। कहा : कभी, कभी। जब समय मिल गया। वो : कौन सा 'न्यूज चैनल' पसंद है? इसका जबाव कुछ देता कि उसने लैपटॉप का स्क्रीन मेरी तरफ घुमा दिया। कहा : तो यह तुम हो। कवि। कोई ब्लॉग था जो चुगली कर बैठा था।

एक पल के लिए मैं ध्वस्त हो गया। मैं नौकरी के दरमियान किसी को बताना नहीं चाहता था कि मैं आलोक श्रीयुत तिवारी से अलग कुछ हूँ। कभी कोई बुरी या भली नौबत आई तो खुद ही बताना पसंद करता कि मैं कविताएँ भी करता हूँ। यहाँ बातचीत दूजी शक्ल ले चुकी थी। यह सूचना भी रहस्य की तरह खुल रही थी। गैरजरूरी पेंच बन रहे थे। वो चालाक इतना था कि मेरे कवि होने से जुड़ी किसी बात पर आया ही नहीं जिसका मैं जबाव देता। वो अपने पूर्व प्रश्न पर क्रीज से आगे निकल आए बल्लेबाज की तरह लौट आया : कौन सा न्यूज चैनल पसंद है?

बताया, मैं टी.वी. नहीं देखता। दरअसल, मैंने टी.वी. रखा ही नहीं है। जैसे मेरे कवि होने से बड़ा कोई आश्चर्य इस दुनिया में न हो, उसने मेरी टी.वी. न देखने के खुलासे को लापरवाही से स्वीकार किया। पूछा : क्यों? मैं : दरअसल, समाचार चैनल मुझे डराते हैं। वाचकों की शैली मुझमें अपराधबोध भर देती है। समाचार बाँचने के उनके तरीके से लगता है कि वे मुझे डाँट रहे हों। कह रहे हों कि इस दुनिया में हुई सारी हत्याओं, लूटपाट का जिम्मेदार मैं ही हूँ। इन कार्यक्रमों का पार्श्व संगीत ऐसी रफ्तार का होता है कि मेरी धड़कन बढ़ जाती है। मैं चैनल भी इस तरह देखता हूँ जैसे बीते बचपन में किसी की गोद में छुपकर रामलीला देखता था।

वो खुल कर हँसा और अपनी टीप से मेरी मुश्किल बढ़ा दी : सो, यू आर रियली अ पोयट। उसका यह वाक्य मेरे लिए अपना पक्ष रखने का मौका था। पहले ही दिन अपनी नौकरी की मुश्किल बढ़ाना कोई होशियारी नहीं होती। मैंने अड़ने के अंदाज में कहा : कवि हूँ नहीं, था। कॉलेज में। अड़े रहने की खातिर मुझे अपनी बात पर विश्वास करना भी जरूरी था और इसके तर्क यह थे कि नौकरी के बाद लिखना कम से कमतर

होता गया। अब मैं सिर्फ विचारों से कवि रह गया था। कभी कुछ टाँक दिया, कहीं कुछ नोट कर लिया पर लिखने में जो अनुशासन मैं पसंद करता था, उससे दूर हो चला था। इसलिए मैंने दुबारा कहा : था। पहले मैं कवि था।

प्रदीप ने मेरे आत्मविश्वास के आयतन से मेरा भय भाँप लिया। कहा, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। बस अपना काम हर हमेशा पूरा करते रहना। यहाँ ज्यादातर लोग खाली समय का खासा हिस्सा टैक्स बचाने, शेयर खरीदने या प्रॉपर्टी डीलिंग में बिताते हैं। इनका काम अधूरा रहा तो सब इन्हें काम के लिए डाँटेंगे पर किसी कलाकार का काम अधूरा रहा, मसलन तुम्हारा, तो तुम्हें समय इधर उधर खर्च करने के लिए डाँटेंगे। प्रदीप ने यह भी सलाह दी, जब तक जरूरी न हो, किसी से यह न बताओ कि तुम 'उभरते हुए कवि' हो - यही लिखा था न तुम्हारे बारे में। इस आश्वासन ने मुझे राहत दी।

दो एक दिन बाद मैं नाश्ते की मेज पर प्रदीप और दूसरे लोगों के साथ बैठा हुआ था। 'ज्ञान मीमांसा' चल रही थी। विषय संदर्भ एक विज्ञापन था। मैं और प्रदीप शब्दों की मितव्ययिता के पक्ष में थे और दूसरे मैनेजर्स सब कुछ एक छोटे से विज्ञापन में बता देना चाहते थे जो उसे अंतत: अदर्शनीय बना रहा था। तभी एक बुजुर्ग सज्जन आए। परिचय थमाया। बहुत ऊँची पदवी पर थे। जो कुछ भावभीनी अंग्रेजी में कहा, उसका आशय था : तो तुम कवि हो? उनके कहने में प्रश्न से अधिक दुलार वाला आश्चर्य था। मैंने प्रदीप की ओर देखा। वो मुझसे चारेक साल सीनियर था। प्रदीप मुस्करा बैठा। मैंने बुजुर्ग सज्जन से कहा : आई वॉज। था। मैं हँसी के साथ तैयार था और ठठाते हुए बोला : नौकरी समय कहाँ देती है सर? वो मुझे देखते रहे, मैं बीच बीच में प्रदीप तथा दूसरों को देख लेता था।

उन्होने नाश्ता हमारे साथ ही किया। वे कंपनी के बड़े बुजुर्ग थे इसलिए उन पर 'स्वयं सेवा' का नियम लागू नहीं था। जो ऑफिस मेड्स थी उनमें से एक उनके लिए पोंगल और बड़ा लेकर आई। दूसरी ने कॉफी या चाय के बीच क्या लेंगे पूछा। वो बताने लगे, उन्होने नौवीं कक्षा तक सितार बजाने की शिक्षा ली थी। एक कार्यक्रम में, जहाँ तत्कालीन मुख्यमंत्री आमंत्रित थे, एक संगीतकार की संगत भी की थी। यह बताते हुए उनके हाथ अदृश्य किसी सितार पर घूम रहे थे। उनकी आवाज गूँजती हुई उठ रही थी जैसे कोई थका हुआ आदमी अपनी पोटली किसी और को थमा रहा हो। कहने की जरूरत नहीं, इस विश्वास के साथ कि जिससे यह दूसरा आदमी ही उसकी पोटली गंतव्य तक ले जाएगा।

इसके बाद मुझसे उन्होने जो कुछ कहा, वह अंग्रेजी में तो सुंदर प्रतीत हो रहा था पर उसका हिंदी अनुवाद बेहद रोमांटिक बन रहा था। मेरा ध्यान दो भाषाओं के बीच की खाई में उलझ गया। उनके कहे की इतनी ही स्मृति बची कि आलोक, यू शुड कंटिन्यू एज पोएट।

उनके जाने के बाद सबने पूछा : क्या मैं कवि हूँ? इन सबको मैंने मजाक से पीटा : नहीं, आदमी हूँ। प्रदीप अलबत्ता चुप था। उसके पास सीनियर होने की बढ़त हासिल थी वरना अभी वो मुझसे निगाह भी शायद ही मिला पाता। उसी दिन के किसी सकुचाए पल में उसने बताया : स्लिप ऑव टंग। तुम समझ सकते हो। मजाक का एक थप्पड़ मैंने इन्हें भी लगाया : जी, मैं समझ रहा हूँ। अगर मेरे जॉब पर कोई मुश्किल आई तो फिर आप समझना। उसे हँसना ही था।

एक बात मेरी समझ में आ रही थी या नहीं आ रही थी कि इन लोगों के सवाल पूछने के अंदाज में जो एक सम्मान था, उसका क्या पाठ हो? कवि होने की खबर कपूर की तरह उड़ी और सब किसी संकोच या शर्म में आकर मुझसे अलग से पूछते : मैं कवि हूँ? मैं क्या लिखता हूँ? क्या वो प्रकाशित भी होता है? ज्यादातर कर्मचारियों की दिलचस्पी यह जानने में थी कि क्या लिखने से मुझे पैसा भी मिलता है? कई लोग यह सलाह देते, मैं मुंबई क्यों नहीं चला जाता?

इनसे उलट, शायद मेरे बारे में प्रचार के अपराधबोध से या मेरा दिल रखने के लिए, प्रदीप सुनाता, सभी संगठनों में विरोधी विचारों के एकाध लोग भी होने चाहिए। मैं अगर सी.ई.ओ. बना तो तुम्हें कवि होने की खुली छूट दूँगा। जो उसकी आदत थी मजाक से आनंद लेने की, उस कारण वो जब तब मेरे कवि होने की बेकद्र करते रहता था। यह उसकी एकाध अच्छी बातें थी वरना हर वक्त हम दोनों में ठनी रहती थी।

उसकी आदत हो गई थी कि वह किसी के भी सामने मेरे कवि होने का जिक्र छेड़ देता। इससे मेरे कामगार होने की छवि अगर धूमिल न होती तो 'डाईल्यूट' जरूर हो जाती थी। जिस दिन मैं रामायण महाभारत लिखे जाने के काल को लेकर अपने एक बड़े अधिकारी के कष्ट मिटा रहा था और लगभग बात पूरी कर चुका था कि प्रदीप गंभीरता से पूछा, आलोक वह जो काम मैंने तुम्हें सौंपा था उसका क्या हुआ? मुझे ही नहीं सबको लगा कि वो मुझे मेरी औकात बता रहा है।

वो जमा जमाया आदमी था और उसके पास तेज तर्रार असिस्टेंट भी थे इसलिए उसका काम जल्दी पूरा हो जाता। मैं नया था। दूसरे, कविता लिखने के समय से ही मेरी आदत थी कि जितना समय मैं काम पूरा करने में खर्चता, उससे अधिक समय

उसे दुहराने तिहराने में लगाता। कविता मेरी इतनी ही मदद नहीं करती थी। बाज वक्त वो मेरे लिए ढाल बन कर खड़ी रहती। काव्यपंक्तियों में मैं छुपा रहता। शायरी के सहारे मैं लोगों पर वार करता था।

प्रदीप आकर मुझसे कोई न कोई बहस छेड़ देता। आर्थिक विश्लेषण का मास्टर था। अगर आपकी तैयारी जमीनी न हो तो दो दिन में वो वशीभूत कर लेता था। दफ्तर के लोग उसे बुद्धिजीवी मानते थे। मार्केटिंग का बंदा था पर जब फाइनांस का जिक्र छेड़ देता तो अच्छे अच्छे लोग यह शक करते थे कि डबल एम.बी.ए. है या जरूर फाइनांस से एम.बी.ए. कर रखा है।

मेरे मामले में उसका यह रवैया समझ से परे था कि हर वक्त मुझे अपने साथ क्यों रखना चाहता है। सीनियर था इसलिए मेरे पास आकर बैठने में उसे झिझक आती थी फिर भी आ ही जाता था। फोन करते हुए। कॉफी पीते हुए। मतलब कि उस बँधे बँधाए दायरे में जितना अलोकतांत्रिक हुआ जा सकता था, वह था। बड़े बड़े अधिकारियों से, जिनके सामने प्रदीप के बॉस तक की घिग्घी बँध जाए, वह आराम से अपनी राय रखता और अपनी छवि को मजबूत करता रहता था। वह दरअसल अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल कर रहा था और सब यह देख रहे थे।

अपने सहायकों को पूरी छूट देता। उसे बस काम पूरा दिखना चाहिए फिर आप चाहें गैर हाजिर रहो, सिनेमा जाओ या जो मर्जी आए करो। काम अधूरा रखने वालों को देर रात तक बिठाए रखता। कोई सहायक किसी मामले में चुगद निकल जाए तो उसे लताड़ते हुए उसका काम भी पूरा कर देता। दूसरे बॉस ऐसे नहीं थे। जैसे आप उनकी पत्नी हों कि वो आपके पल पल की खबर रखते थे। मेरे लिए अलबत्ता यह कोई मुश्किल न थी। मैं नियम कानून का पाबंद दिखना चाहता था। यह तो प्रदीप ने मेरे कवि होने का भेद बता दिया वरना मैं कभी कोई ऐसी हरकत नहीं करता था जिससे मुझे भीड़ से अलग 'नोटिस' किया जाए।

मसलन, बाँग्ला मूल के एक अधिकारी ने मुझसे पूछा, क्या मैं ... ? मैंने उनका सवाल पूरा नहीं होने दिया, कहा : जी, मैं एक मैनेजर हूँ। आई लुक ऑफ्टर रीजनल सेल्स। वो इतने भले थे कि आश्चर्य से भर गए, पूछा : तो कोई दूसरा आलोक होगा, प्रदीप बता रहा था कि आलोक कवि है। मैंने उनका भ्रम दूर नहीं किया। उन्होने यह भी कहा, पाँच साल के उनके बेटे को हिंदी की कई कविताएँ याद हैं। साथ ही सप्ताहांत में किसी दिन साथ लंच करने का प्रस्ताव भी रखा।

जिस दिन मेरे बॉस ने मुझसे कहा कि सारा समय मुझे नौकरी में लगाना चाहिए, उस दिन मैंने अपनी आशंका को सही पाया। प्रदीप की ट्रिक काम कर गई थी। मैंने सोचा, यह सवाल रखूँ - आपको ऐसा क्यों लगा कि मैं नौकरी पर समय नहीं देता। पर मैं नया था और एक ऐसी भूल-गलती कर बैठा था जिससे नुकसान कम चिंता अधिक थी।

मकर संक्रांति के पर्व पर मैं प्रदीप से प्रभावित हुआ। दफ्तर छूटने का समय था। वो ऐसे ही किसी बात पर जमी नामाकूल बहस में कुछ लोगों को उलझाए हुए था। अचानक मुझसे पूछ बैठा - पंडित, चूड़ा दही खिलाता हूँ तुझे, कल घर आ मेरे? मैं छुट्टी खराब होने के ख्याल से घबराया। मेरे ख्याल से अंजान वो मुझे रास्ते समझाने लगा। मैं भी शहर में नया था और 'कवि' होने के प्रचार से डरा था। सोचा, घर पर सुलह होगी।

आलीशान घर था। चौखट के भीतर दाखिल होते ही पत्नी से परिचय कराया - आलोक। ही इज अ पोएट ऑव वर्नाकुलर। मैंने मन ही मन अपना सिर पीट लिया। मैंने हँसते हुए प्रतिवाद किया - आप मेरे कवि होने का जिक्र हर जगह क्यों करते हैं? दफ्तर में सब मुझे संग्रहालय की कोई चीज मानने लगे हैं।

वो ठहरा, मुझे सोफे पर बैठाते हुए कहने लगा - तुम्हें इस पर नाज करना चाहिए। मुझे यह मौका मिल रहा था, जिसे मैंने जाने नहीं दिया : जी, मुझे नाज है। मैं शौकिया कवि नहीं हूँ। दफ्तर में इसके मायने अलग है। कोई भी कह सकता है कि मैं कविता पर अधिक समय देता हूँ। मैं ऐसी जगह काम करना चाहता हूँ जहाँ मेरे कवि होने से न मुझे कोई नफा हो और ना ही नुकसान।

बात लंबी खिंचती पर भाभी ने हस्तक्षेप किया। वो इतनी सुंदर थीं कि मैं उनकी बात मान गया। मैंने उन्हें दुबारा नहीं देखा। दुबारा तिबारा देखने से दूसरा कुछ हो न हो, अगले कुछ दिनों तक मैं बेचैन जरूर रहता। सुंदर स्त्रियों से मैं इतनी भर आजादी चाहता था कि उन्हें एक बार बता सकूँ, वे सुंदर हैं। यह छूट मुझे हर जगह मिलनी संभव नहीं थी। भाभी भी कहीं किसी कंपनी में ऊँचे किस्म की मैनेजर लगी हुई थीं। नफासत उनके व्यक्तित्व ही में नहीं, तिल की लाई रखने के अंदाज तक में था।

जब हम दुकेले हुए तब प्रदीप ने एक बात रखी : माई वाइफ इज एक्सपेक्टिंग। हम बच्चों के नाम तलाश रहे हैं। कवि हो इसलिए कुछ नाम तुम्हारे जेहन में हो तो बताना। मैंने अनायास ही पूछ लिया : लड़का या लड़की? इस सवाल का उसका जवाब उसके अब तक के व्यक्तित्व से मेल नहीं खा रहा था। मेरे प्रश्न पर वो झुँझला गया,

कहने लगा : कम ऑन यार। मैं ऐसा हिप्पोक्रेट नहीं कि बातें लंबी लंबी छाटूँ और बच्चे के जन्म से पहले जाँच कराऊँ। यह हिप्पोक्रेसी तुम इंटेलेक्चुअल्स पालते हो।

आगे की बातें व्यक्तिगत होती गई। शादी, प्रेम, जीवन, इत्यादि। पर मैं था कि उसके जवाब पर टँगा हुआ था। पहले ही दिन से वो मुझे भारी हिप्पोक्रेट लगा था। सच में मुझे आश्चर्य हुआ कि उसे अपने होने वाले बच्चे का कुछ पता नहीं है। एक सवाल के इकहरे जबाव ने उसकी छवि मेरे मन में पलट दी। मुझे यह भी लगा कि काश कल से यह मेरा मजाक उड़ाना बंद कर दे।

दफ्तर की बातें अपने अंदाज में चलती रहीं, उनके बीच ही मैंने अपनी जगह मुकम्मल की थी। जो बात जिक्र-ए-मीर है, वह है प्रदीप की बेटी का जन्म। महीनों बाद की बात है। प्रदीप बेहद खुश था। वह प्रदीप जो मेरा मजाक उड़ाने से कभी बाज नहीं आता था, उसने बताया कि माता पिता के बाद सबसे पहला फोन वह मुझे कर रहा है और यह भी कि बेटी आशीर्वाद की तरह आई है और लगे हाथ यह भी कि मेरे सुझाए नामों में से दो नाम वो अपनी बेटी के रख रहा है। घरू नाम - 'लोरी' और बाद के लिए 'संस्कृति' चुना है।

मैंने पूछा : दो नाम क्यों? हँसी हँसी में उसने खूब जबाव दिया : मैं तेरी तरह जनसंख्या बढ़ाने का पक्षधर तो हूँ नहीं। इसलिए दो नाम रखने से मुझे लगेगा, मेरी दो बेटियाँ है। समझे कवि। फोन रखते रखते उसने कहा आलोक, तुझसे एक और बात करनी है, पर अभी सबको सूचित कर लूँ। मैं समझ नहीं पाया, उसे मुझसे क्या बात करनी है। जहाँ तक मेरा मन मस्तिष्क जा सकता था मैंने विचारा। किसी हल तक पहुँचने से पहले लौट आया। इस सवाल का जबाव न पाकर मैं इतने भर में ऊभ चूभ होने लगा कि यह क्या कम है, प्रदीप ने सबसे पहला फोन मुझे किया।

हफ्ते दो हफ्ते भर बाद वो दफ्तर आया। शहर के सबसे अच्छे होटल 'लेमन ट्री' में उसने पार्टी रखी। कंपनी के सारे अधिकारी भेद भाव भुलाकर शामिल हुए। दफ्तर का माहौल मंदी के कारण गर्म था। सबको अपनी गर्दन पर तलवार दिख रही थी। काम और दफ्तरी राजनीति दोनों में मैं विलक्षण नहीं था इसलिए मैं भी डरा डरा था। प्रदीप इन सबसे बेखबर नहीं था पर उसकी खुशी सारी बातें छुपा ले रही थी। मुझसे मिलते ही पूछा : क्या हीरो? क्या उल्टी पुल्टी खबर चला रहे हो? वो इतना व्यस्त था कि मैं मुस्करा भर पाया। अगर कुछ कह पाता तो यही कि संबोधन में कवि की जगह हीरो ने कब ले लिया?

हद तो तब हुई जब कंपनी के सी.ई.ओ. से मेरा परिचय उसने कराया। इसकी कोई जरूरत नहीं थी। अगर हम धरती के लोग थे तो ये सब अधिकारी जैसे सी.ई.ओ. आदि अंतरिक्ष के सर्वाधिक चमकीले तारे सरीखे थे। उनसे मिलना या न मिलना मेरे लिए कोई मायने नहीं रखता था। मेरा परिचय कराते हुए प्रदीप बोल पड़ा : ...एंड ही इज अ फेबुलस पोएट। इतना कहते न कहते उसने जीभ काट ली। भाव से लगा, उससे गलती हो गई है। वहाँ मौजूद लोगों ने यह तुक जरूर पकड़ लिया। एक सज्जन ने पूछा : गालिब को जानते हो?

मैं मन ही मन हँसा। होगा कोई ऐसा भी जो गालिब को न जाने। पर यह दुनिया अलग थी और सबको जानने की शर्त नहीं थोपी जानी चाहिए। वो फिर गालिब, बुद्ध या कृष्ण ही क्यों न हों। मैंने हाँ में सर हिलाया। पता चला, वो सज्जन हमारी कंपनी के नए सी.एफ.ओ. हैं। मैं गालिब को जानता हूँ, यह बात उस सज्जन को जँची। खुश हुए। कहने लगे, काम पर ध्यान धरो। यूज योर क्रियेटिविटी फॉर कंपनी। ओके? मैंने इससे अलग कुछ कहना नहीं चाहता था, यस ओके। वहाँ से छूटते ही प्रदीप ने खेद जताया। कहा, आज इरादतन नहीं था। मैंने भी जाने दिया। जाते जाते प्रदीप ने कहा, मेरे घर आओ किसी दिन, कुछ बात करनी है। मैं फिर उसी सोच में पड़ा - क्या बात हो सकती है?

बात थी। उसके घर गया। वो अकेला था। पत्नी स्वास्थ्य लाभ और नवजात की देखभाल के लिए मायके में रुकी हुई थी। जो बात उसे बतानी थी वो मेरे लिए सामान्य थी और उसे रहस्यमय बनाने की जरूरत कत्तई नहीं थी। इसलिए, मामले को समझने के लिए मैं खुद को प्रदीप की जगह पर रख कर देख रहा था। वो मुझे अंदर के कमरे में ले गया। बताने लगा : मैं आज तक जानता नहीं था कि मेरी पत्नी के नाना जी कवि थे।

मुझे गुस्सा आ गया। इतनी मामूली बात को रहस्यमय बनाने की जरूरत क्या थी। अलबत्ता प्रदीप के लिए यह मामूली नहीं था। उसने फिर जोर दिया : पत्नी ने मुझे कभी नहीं बताया। इस बार जब मैं उसके घर दस दिन रहा तो यह बात खुली। देखो, उनकी सारी किताबें उठा लाया हूँ। वहाँ वे रसोईघर में पड़ी हुई थीं।

मैंने देखा, परखा, सात किताबें थीं। बालमुकुंद शर्मा। कवि का यह नाम था। गुस्सा मेरा अब भी वही था कि यह तो सामान्य बात हुई। कवि होना रहस्य की बात नहीं और उसका खुलासा इस तरह सात पर्दों में हो, प्रदीप जैसे व्यवहारिक और प्रोफेशनल इंसान से ऐसी भावुकता की उम्मीद नहीं थी। यह विश्वास करना भी कठिन हो रहा था

कि यही वो व्यक्ति है जो मेरे कवि होने को हल्के में लेना अपनी फितरत समझता रहा है। मेरे ख्यालों से अन्जान प्रदीप ने जो बात कही, उसे मेरे जेहन में हू-ब-हू उतर जाना था - डोंट यू थिंक माई डॉटर बिलॉग्स टू ए ट्रेडिशन? ए पोएटिक ट्रेडिशन?

मैं अजब मुश्किल से दो चार था। क्या जबाव दूँ? यह आदमी जो मेरे कवि होने को और कविता से उपजे तर्कों को अपने मार्केटिंग दिमाग पर हमला मानता था, मेरे कवि को तुच्छ या दोयम साबित करने का कोई मौका नहीं छोड़ता था, आज अपने खानदान में एक कवि पाकर विह्वल हुए जा रहा है। अपने ही में गुम उसने फिर कहा : क्या संयोग है कि नाना जी के कवि होने का पता तभी चला जब लोरी का जन्म हुआ? है ना?

उसने मुझे एक फाइल दिखाई जिसमें सैकड़ों पत्र थे। उन पत्रों से गुजरते हुए मैं अपनी राय बना रहा था कि नाना - कवि के औसत होने रहस्य प्रदीप को कैसे बताया जाए? मैं उससे कहना चाहता था, सर यह साधारण कविताएँ है, तब तक मुझे मुक्तिबोध के हस्ताक्षर वाले कुछ पत्र दिखे। यह अजूबे से कम नहीं था और अब चौंकने की बारी मेरी थी। मेरी आँखों की चमक प्रदीप ने धर ली। पूछा : महत्वपूर्ण कागजात है क्या?

मैंने अपना मुँह ऐसे खोला जैसे किसी साहित्यप्रेमी से मुखातिब हूँ और मुक्तिबोध का नाम बताकर उसे सारा कुछ समझा लूँगा पर क्षण-पलक में ही मैं चुप हो गया। उसने मेरी मंशा भाप ली, कहा : अगर इसमें से कुछ रखना चाहते हो तो रख लो।

मेरे सामने मुक्तिबोध का हस्ताक्षरित पत्र था और उसे रख लेने की छूट मुझे मिल रही थी। मेरा मन डोला। मेरी निगाह में इस कवि की अहमियत बढ़ने लगी। मैंने उनकी कविताएँ दुबारा दुबारा पढ़ीं और उनके अर्थ खुलने लगे। मैंने लालच को हावी नहीं होने दिया, प्रदीप से चुहल की : यह वो विरासत है जो आपकी बेटी को मिली है। इसे आप सहेज कर रखिए। अलबत्ता मैं इन पत्रों की नकल जरूर निकालना चाहूँगा। आप कहो तो बालमुकुंद जी की कविताएँ ब्लॉग पर डाल दूँ।

प्रदीप किसी और दुनिया में खोया हुआ था, हल्के से कहा : ब्लॉग पर लगा सकते हो? मेरे प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा किए बगैर कहने लगा, सोचो यार, मेरी पत्नी के खानदान में कोई कवि हुआ है। है न अच्छी बात? मैं बस उसे सुन रहा था। वो एक एक कर सभी किताबों के कवर पलट रहा था। ब्लर्ब के कुछ हिस्से सस्वर और बाकी मौन ही मौन पढ़ रहा था। प्रदीप के मन में कविता को अचानक मिले ऊँचे पायदान पर मुझे आश्चर्य हो रहा था।

मैंने हँसी में कहा, मेरे कवि होने का बड़ा मजाक उड़ाया करते हैं। प्रदीप आज किसी और ही जगत में व्याप गया था। कहने लगा, तुम्हारे तर्क हमेशा उल्टे और मूर्खतापूर्ण होते हैं। उनसे मुझे डर लगता है। जैसे उस दिन जब तुम बता रहे थे कि क्यों तनख्वाह में दुनिया की सारी संपत्ति नहीं दी जा सकती। जबकि मैं निजी क्षेत्र में आया ही इसलिए कि मुझे पैसा चाहिए। पैसे के लिए मैं रिश्वत नहीं ले सकता। मैं यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं किसी से रिश्वत माँग रहा हूँ या किसी फंड का दुरुपयोग कर रहा हूँ। वरना मैं सरकारी नौकरी में आराम से जा सकता था। लेकिन तुम्हारे उस दिन के तर्कों से मैं घबरा गया।

मुझे अच्छी तरह याद है उस दोपहर क्या हुआ था। मैंने यही कहा था कि काबिलियत के आधार पर तनख्वाह तय करना एक हद तक ही सही है। मैंने उसे स्मरण कर हँसना ही मुनासिब समझा और बालमुकुंद के पत्र और उनकी कविता पुस्तकें अपने बैग के हवाले कर दिया। प्रदीप बता रहा था, नाना जी की कविताएँ और उनकी भाषा उसे कम समझ आई। उस दिन हमने साथ ही भोजन किया। खाने की मेज पर मैं प्रदीप के स्वभाव में एक नर्मी महसूस कर रहा था। हो सकता है, बेटी के जन्म ने इसे जिम्मेदार बना दिया हो और अपनी समझ के अनुसार उस जिम्मेदारी का श्रेय खानदानी कवि को दे रहा हो। वो मुझसे छत्तीसगढ़ तथा अन्य राज्यों के बारे में बात करता रहा। आज भी उसका रवैया आलोचनात्मक ही था पर उसमें भाषाई हिंसा नहीं था। मैंने भाषाई साम्राज्यवाद में हिंदी की भूमिका पर राग मनमौजी शुरु किया तो वह फिर घबरा गया। कहने लगा, यह क्या? अब तुम हिंदी को गाली देने लगे?

क्या आपने कभी किसी ऐसे खिलाड़ी के साथ शतरंज खेला है, जिससे कभी जीत ही न पाए हों। क्या हो अगर एक दिन अचानक आप उसका वजीर दबोच लें? मैंने प्रदीप का वजीर मार गिराया था। हाँ, यह जरूर है कि इसका पता मुझे कुछ दिन बाद चला - खेल वजीर के बिना भी होता है। प्रदीप के प्रति मैंने कोई हिमाकत नहीं दिखाई। ज्ञान की दिखावटी विनम्रता से मैंने उसे मारा। वो अलबत्ता सारी कोशिशें कर थक गया पर मेरे कवि होने का मजाक बार बार कर बैठता। मैंने भी उस मजाक को हल्के में ही लेना शुरु किया।

आगे की कथा मुख्तसर सी है। मंदी और छँटनी के माहौल में प्रदीप और दो एक के अलावा बाकी सभी प्रोडक्ट मैनेजर्स अपने बिजिनेस से कोई लाभ निकाल पाने में अक्षम थे। ऐसे में कंपनी ने प्रदीप तथा दो एक शानदार मैनेजरों पर विश्वास दिखाते हुए उसका लक्ष्य दो गुना कर दिया। प्रदीप ना तो कर नहीं सकता था पर अपनी कुछ शर्तें मनवा सकता था। लक्ष्य पूरा करने हेतु संसाधन संबंधी जो माँगे उसने रखीं उसमें

से ज्यादातर मान ली गईं। केवल विज्ञापन के खर्चे में कटौती की गई। साथ ही उसे एक शख्स चाहिए था, जो सेल्स टीम की समीक्षा और विज्ञापन के कामों में उसकी मदद कर सके।

मैंनेजमेंट उसे इस पद के लिए कोई स्टाफ देना नहीं चाहता था। वजह यह पता चली कि जिस आदमी के विभागीय तबादले की सिफारिश इस पद के लिए प्रदीप कर रहा था, उसकी रिपोर्ट खराब थी। उस कर्मचारी के बॉस ने अपनी टीम से निकाले जा रहे कर्मचारियों में उसका नाम तीसरे नंबर पर रखा था। आप समझ सकते हैं, वह कर्मचारी कौन रहा होगा?

नौकरी मेरी जरूरत थी। यह शायद प्रदीप मुझसे अधिक जानता था। उसने मैंनेजमेंट से मुझे सर्वे के तथा उसकी रिपोर्ट बनाने के ऐसे काम दिलाए जिन्हें अगर मैं पूरा कर लूँ तो न सिर्फ मेरी नौकरी सुरक्षित रहती बल्कि मुझे प्रदीप की सुपरवाइजरी में भेज दिया जाता। ऐसा भी नहीं कि मुझे जो कठिन काम मिला था सारा का सारा प्रदीप ने ही पूरा किया हो। मैं भी प्रदीप के साथ दो दिन लगा रहा, तब जाकर वह रिपोर्ट मैं जमा कर पाया। उसने किस बात की छुट्टी ली यह तो पता नहीं पर मैंने बीमारी का बहाना किया था। इसकी कीमत उसने मुझसे सूद समेत वसूली - वो अच्छी कविताएँ सुनना चाहता था।

वो भाषा और हिंदी कविता के तर्कों से इतनी दूर हो चला था कि मैं मुक्तिबोध या तुलसी का रिस्क नहीं ले सकता था। मैंने साथी नीलांबुज का एक सादा सा शे'र चुना :

इश्क वालों में ये किस्सा बड़ा मशहूर रहा

जो दिल के पास रहा वो ही दूर दूर रहा।

उसने पूछा, ये क्या तुमने लिखा है। मैंने इनकार किया। उसने कहा, वही तो, तुम्हारी कविताएँ मैंने ब्लॉग पर पढ़ने की कोशिश की पर मेरी निगाह बिछल बिछल जा रही थी। एक भी पंक्ति पल्ले नहीं पड़ रही थी। यह कह सुन कर हम दोनों ही हँसे।

स्मृति घटनाओं को छान कर संघटित कर देती है वरना जो बातें यहाँ इतनी तेज रफ्तार से दरपेश हैं, उन्हें घटित होने में छः सात महीने का समय लगा था। जैसे केदारनाथ सिंह की कविताएँ। मैं उसे केदारनाथ सिंह की प्रेम कविताएँ पढ़ाना चाहता था। किताब देने में एक खतरा यह था कि वापसी की उम्मीद क्षीण हो जाती। जब मैं उसे फ्लिपकार्ट से किताब मँगाने की सलाह दे रहा था तब उसने एहसान के खेल का

दहला चलते हुए मुझे अपना क्रेडिट कार्ड थमा दिया, यह कहते हुए कि मैं भी अपनी पसंद की दो चार किताबें मँगा सकता हूँ। वरना यही प्रदीप है जो किताबें खरीदने को ऐय्याशी समझता था। जो भी हो, केदार जी की एक कविता 'जाना' को उसने गुनगुनाने की हद तक याद कर लिया था और एक दिन मैंने देखा कि 'आना' कविता का प्रिंट आऊट उसके टेबल पर पड़ा है।

दूसरी तरफ, मेरी नौकरी का नया रूप उसी का बख्शा हुआ था। मुझे एहसान का यह चुप्पा संस्करण खाए जा रहा था। कविता के जिस मोर्चे पर हम साथ हो रहे थे वहाँ एहसान जैसी चीजें मायने नहीं रखती पर यह सोचना ही अजब था कि नौकरी में जो मेरा गुरु था, वह कविता पर, मेरे कवि होने पर एहसान कर रहा था।

महीने भर के भीतर मैंने यह तय कर लिया था कि मुझे यह नौकरी छोड़नी है। हमारे संबंध आत्मीय हो चले थे। मैं जानता था कि उसकी टीम में मैं सबसे कमजोर हूँ। वो अपनी टीम में बंदों को बहुत ठोंक बजा कर शामिल करता था। आत्मीयता यह थी कि हमारे बीच संवाद कम हो चले थे। दफ्तर से जुड़ी अधिकतम बातें मेल पर हो जाती थीं। मेरे काम में कोई कमी हो जाने पर मुझे बुलाता तक न था। उसे ठीक करता और वो फाइल मुझे दुबारा भेज देता। गलतियों को सही कर उन जगहों के अक्षर वो मोटे टाइप में कर देता। फिर कभी इसका जिक्र तक न करता।

नई नौकरी ढूँढ़ लेने के बाद जिस दिन मैंने इस्तीफे की पेशकश की उस दिन की बात है। स्मृतियों में बस जाए, ऐसी दोपहर हुई थी। वो मुझे लंच के लिए बाहर ले गया। उसने कहा था, इतनी भी क्या जल्दी है, जिस पद पर हो उसका कर्ज तो उतारते जाओ। तुम्हें मेरी जगह लेनी है। कंपनी को तुम्हारी जरूरत है। फिर इस्तीफे की बात को दरकिनार कर कविता चर्चा पर चला आया। कहने लगा, तुम जो महसूस करते हो वही लिखते हो? आई मीन, तुम अजीबो गरीब बातें लिखते हो। मैं समझ गया वो मेरी ताजा कविताएँ पढ़ आया है। ताज्जुब यह था कि अब कविता उसके जेहन में बैठ रही थी। कहने लगा, तुमने यह क्यों लिखा - आँखों में खुलता हुआ आसमान या फिर तितलियों का संग्रहालय या फिर गुस्सैल चींटियाँ अपने आप को पानी पर धकेल रही हैं।

मैं बस यह सोच रहा था कि क्या कविता इस कदर संक्रमित करती है। जवाब देना जरूरी था। इसलिए नहीं कि प्रश्न मेरे बॉस के थे बल्कि इसलिए कि कविता से जुड़े थे। मैंने लंबी साँस भरी और जानबूझ कर प्रेमिका का जिक्र खींच लाया, बताया, जी हाँ यह मेरी महसूसियत है। इनदिनों मैं जिस साँवली स्त्री से प्रेम करना चाहता हूँ उसकी

आँखें वाकई इतनी बड़ी हैं कि मैं उन्हें एक निगाह में पूरा देख नहीं पाता और उन्हें आसमान की तरह टुकड़ों में देखना होता है। मसलन उसकी काली पुतलियाँ आसमान में तैरती हुई मालूम पड़ती हैं। पहले वाला प्रदीप रहा होता तो मेरी होने वाली प्रेमिका को लेकर कुछ मजाक जरूर करता। प्रेमिकाओं की ऊम्र उसका पहला सवाल हुआ करता था। पर आज उसके प्रश्न प्रशिक्षु कवि की तरह थे : और तितलियों का संग्रहालय?

मुस्कराने की बारी मेरी थी। मुझे अपना इस्तीफा स्वीकृत होता दिख रहा था फिर भी मैंने बताया, जी, उस स्त्री के होठ बेहद छोटे हैं और वो जानती है कि उस पर मेरा अनुराग है ...उसने बीच में रोका, टोका - अनुराग मतलब? प्रेम - मैंने समझाइश की मुद्रा में पसरते हुए बताया - उससे प्रेम है। इसलिए वो मुझे देख कर अपनी सारी मुस्कराहट बाँध लेती है। मुझे बाज दफा लगता है कि उसके होठ तितलियों के संग्रहालय हैं। जिस दिन वो मुस्कराई, अबूझ रंगों की तमाम तितलियाँ मेरे इर्द गिर्द फैल जाएँगी।

अरे वाह! इतना सोच लेते हो। मैं तो होठ को सिर्फ होंठ ही सोच पाता हूँ, यह मेरी तारीफ थी पर इसके आगे प्रदीप ने मुझे चौंकाया - मान लो लोग उस स्त्री को तुम्हारी कविता पढ़ कर राह चलते लोग पहचानने लगें? मैं शायद अपना प्रश्न बाँध नहीं पा रहा। मान लो, तुम्हारी कविता से मुहावरे निकाल कर लोग उस स्त्री पर पत्थर की तरह चलाने लगें? या उस स्त्री को यह पसंद न हो कि उस पर कविता लिखी जाए? इतने सारे सवाल पूछ कर उसने अपना हाथ 'टैब' की तरफ बढ़ाया।

इस उम्मीद का कोई मतलब नहीं था पर मुझे लगा, क्या पता वो टैब पर मेरा इस्तीफा मंजूर कर रहा हो। मैं ऐसा जबाव देना चाहता था, जिससे प्रदीप चिढ़ जाए और मेरा इस्तीफा जल्द से जल्द मंजूर कर ले। हाँ कवि यह जरूर कह रहा था, जवाब कविता की शर्तों पर होने चाहिए, जीवन के नहीं।

हम दोनों ही मौन धारण कर चुके थे। बीच बीच में एक दूसरे को देख लेते थे। भोजन के बाद प्रदीप ने मात्र दो या तीन शब्दों का इस्तेमाल करते हुए, मुझसे पूछे बिना, मेरे मौन का सम्मान करते हुए, डिजर्ट्स में अपने लिए गुलाब जामुन और मेरे लिए 'नेचुरल्स' का स्ट्राबेरी फ्लेवर का आइस्क्रीम मँगाया। मुझे जो भी जवाब देना था मैंने चुप्पी के भीतर ही दिया। बिल उसे ही देना था। रेस्तराँ से निकलते हुए हम दोनों ही फोन पर जरूरी कॉल्स में लगे हुए थे वरना इशारे के बजाए कुछ कह सुन कर विदा

लेते। मैं तो इतने जरूरी फोन पर था कि यह भी नहीं पूछ पाया - मेरे इस्तीफे का क्या हुआ।

.